कानून निर्माण प्रक्रिया सुधारने में न्यायपालिका की भूमिका

sanskritiias.com/hindi/news-articles/role-of-judiciary-in-improving-law-making-process

(प्रारंभिक परीक्षा : भारतीय राज्यतंत्र और शासन- संविधान, राजनीतिक प्रणाली,अधिकारों संबंधी मुद्दे इत्यादि)
(मुख्य परीक्षा : सामान्य अध्ययन प्रश्नपत्र 2 - संसद और राज्य विधायिका- संरचना, कार्य, कार्य-संचालन, शक्तियाँ एवं विशेषाधिकार और इनसे उत्पन्न होने वाले विषय, न्यायपालिका के कार्य।)

संदर्भ

- संसद में 'विचार-विमर्श की गुणवत्ता' में हो रही निरंतर गिरावट के संदर्भ में विभिन्न हितधारकों ने इस संबंध में सुधार की माँग की है।
- 75वें स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर भारत के मुख्य न्यायाधीश (CJI) ने भी इस समस्या पर चिंता व्यक्त करते हुए कहा कि 'सार्थक विचार-विमर्श' के बिना कानून पारित करने से मुकदमेबाजी में वृद्धि होती है।
- सी.जे.आई. ने सुझाव दिया कि 'वकील और बुद्धिजीवी' विचार-विमर्श की गुणवत्ता में सुधार के लिये आगे आ सकते हैं। उन्होंने इस तथ्य को भी रेखांकित किया कि न्यायपालिका भी 'कानून बनाने की प्रक्रिया को सुधारने' में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

चिंताएँ

- विभिन्न जानकर संसद की दक्षता की परिमाप उसके द्वारा पारित किये गए विधेयकों की संख्या के आधार पर करते हैं। हालाँकि, ये मापन विधि त्रुटिपूर्ण है, क्योंकि इसके अंतर्गत इस तथ्य पर ध्यान नहीं दिया जाता कि 'पर्याप्त सूचना और विचार-विमर्श' के बगैर पारित कानून से कौन-से महत्त्वपूर्ण बिंदु रह जाते हैं।
- बगैर परिचर्चा के किन्हीं विधेयकों को पारित करने से, सभी लोगों पर तो नहीं, किंतु अधिकांश लोगों के हितों या उनके **मौलिक अधिकारों** पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।
- गौरतलब है कि लोग अपने प्रतिनिधियों को चुनते समय यही अपेक्षा करते हैं कि वो प्रतिनिधि उनके 'हितों की देखभाल' करेंगे।
- जनप्रतिनिधि कानून के निहितार्थों के संबंध में उचित परिचर्चा करके या संशोधन प्रस्तुत करके या उन्हें स्थायी समितियों को संदर्भित करके लोगों के हितों की देखभाल करते हैं।

- इसके अतिरिक्त, सरकार का विधायी अंग होने के कारण इसमें समाज के विभिन्न हित समूहों का प्रतिनिधित्व होता है। इसलिये ऐसे मंच पर विचार-विमर्श करते समय यह सुनिश्चित करना चाहिये कि जो भी हितधारक इस परिचर्चा में सक्रिय तौर पर सम्मिलित हो रहा है, उसके पक्ष को भी अनिवार्यतः सुना जाए।
- विधेयकों को शीघ्रता से पारित करने से संसद एक 'रबर स्टैंप की भूमिका' तक सीमित रह जाती है। ऐसा करने से संवैधानिक लोकतंत्र के दो आदर्शों को चोट पहुँचती है, ये हैं- 'समान भागीदारी और मौलिक अधिकारों के प्रति सम्मान के आदर्श'।

विधायी प्रक्रिया का मूल्यांकन

1. विधेयक पारित करने की पद्धति

- न्यायपालिका कानून बनाने की प्रक्रिया में सुधार और इन आदर्शों को सुरक्षित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। न्यायपालिका को ऐसा करने के लिये विधायी प्रक्रियाओं से संबंधित संवैधानिक उपबंधों के 'मूलपाठ और उसकी भावनाओं' को लागू करना होगा।
- उल्लेखनीय है कि संविधान में कुछ विस्तृत उपबंध हैं, जो यह बताते हैं कि संसद और राज्य विधानसभाओं द्वारा कानून कैसे पारित किये जाएँगे। इसे दुर्भाग्य ही माना जाएगा कि इन उपबंधों को कमतर आँका जाता है।
- उदाहरणार्थ, प्रायः किसी विधेयक पर 'वोटिंग' के दौरान 'ध्वनि मतों' या 'हाँ और ना' (Ayes and Nays) की सही संख्या की गणना नहीं की जाती है, फिर भी विधेयकों को पारित मान लिया जाता है, जबकि अनुच्छेद 100 में स्पष्टतया अभिनिर्धारित किया गया है कि बैठक के दौरान सभी 'प्रश्नों का निर्धारण' सदस्यों के बहुमत से किया जाएगा।
- यह मुद्दा हाल ही में तब ज़्यादा चर्चित हुआ, जब विपक्षी सदस्यों की तमाम आपत्तियों के बावजूद 'तीन कृषि कानूनों' को राज्यसभा में 'ध्वनिमत' से पारित कर दिया गया।

2. प्रक्रियात्मक उपबंध

- इसी तरह विधेयकों को धन विधेयकों के रूप में इसलिये प्रमाणित किया जाता है, ताकि उसे राज्यसभा से 'बाईपास' किया जा सके, भले ही वे विधेयक अनुच्छेद 110 के तहत धन विधेयक के लिये आवश्यक मानकों को पूरा न करते हों।
- उल्लेखनीय है कि उक्त अनुच्छेद केवल सात ऐसे क्षेत्रों को चिह्नित करता है, जिनके तहत किसी विधेयक को धन विधेयक के तौर पर मान्यता प्रदान की जा सकती है, इनमे शामिल हैं; कर का अधिरोपण, भारत की संचित निधि से उधार लेने व धन के विनियोग से संबंधित विनियमन आदि।
- आधार मामले में उच्चतम न्यायालय ने अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए यह जाँचने का प्रयास किया कि क्या इस मामले में 'प्रक्रियात्मक उपबंधों' का पालन किया गया है? हालाँकि, इन उपबंधों का गंभीरता से पालन तभी किया जाएगा, जब न्यायपालिका ऐसे उल्लंघनों का समयोचित समाधान करे।
- ऐसे मामले जितनी देर तक लंबित होंगे, तो राज्य यह तर्क दे सकता है कि कानून के तहत प्रदत्त 'अधिकारों और दायित्वों' को 'केवल प्रक्रियात्मक उल्लंघन' के आधार पर चुनौती नहीं दी जानी चाहिये।

3. संवैधानिक वैधता

- न्यायपालिका कानूनों की 'संवैधानिक वैधता' का मूल्यांकन करते समय विवेचना को एक महत्त्वपूर्ण कारक मान सकती है।
- न्यायिक समीक्षा से संबंधित शक्तियों का प्रयोग करते हुए न्यायालय राज्य से किसी कानून के 'औचित्यता और वैधता' के संबंध जवाब माँग सकती है। ऐसा करते समय न्यायालय यह भी जाँच कर सकती है कि विधायिका ने कानून 'तर्कसंगतता' पर विचार-विमर्श किया है या नहीं।

- वस्तुतः विधायी जाँच में निम्नलिखित बिंदुओं को ही ध्यान में रखा जाता है-
    - कानून को न्यायोचित ठहराने वाले तथ्यात्मक आधार;
    - अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के संबंध में कानून की उपयुक्तता;
    - मौलिक अधिकारों पर किसी कानून के पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभाव के सापेक्ष कानून की 'आवश्यकता और आनुपातिकता'।
- दरअसल, **उच्चतम न्यायालय** ने 'इंडियन होटल एंड रेस्टोरेंट्स एसोसिएशन वाद, 2013' में इस विधि को अपनाया था। न्यायालय द्वारा केवल 'थ्री स्टार्स' से कम वाले होटलों में नृत्य प्रदर्शन को प्रतिबंधित करने वाले कानून को अविधिमान्य घोषित कर दिया गया था क्योंकि इसमें 'वर्ग पूर्वाग्रह' निहित था, जो समानता के अधिकारों का उल्लंघन है।
- उक्त कानून में राज्य ने इस आधार पर 'वर्गीकरण' को उचित ठहराया था कि केवल ऐसे होटल 'तस्करी के स्थल' थे। हालाँकि, न्यायालय ने 'कानून बनाने की प्रक्रिया की जाँच' करके इस दावे को खारिज कर दिया और पाया कि राज्य के पास इस दावे के समर्थन में कोई 'अनुभवजन्य आँकड़ें' उपलब्ध नहीं हैं।

4. संवैधानिकता की परिकल्पना का सिद्धांत

- न्यायपालिका किसी कानून की संवैधानिकता जाँचते समय 'संवैधानिकता की परिकल्पना के सिद्धांत' का भी प्रयोग करती है।
- इस सिद्धांत के अंतर्गत न्यायालय संयम बरतते हुए कानून की तर्कसंगतता के संबंध में विधायी निर्णयों को स्थगित करने से बचती है।
- उक्त परिकल्पना इस सिद्धांत पर आधारित है कि विधायिका व्यापक प्रतिनिधित्व और विचार-विमर्श करने वाला अंग है, और यह अपने लोगों की ज़रूरतों को भलीभाँति समझता है।
- जब कोई कानून 'बिना विचार-विमर्श और अनुभवजन्य आधार' पर जाँच किये बिना पारित कर दिया जाता है, तो राज्य के लिये उस कानून की औचित्यता सिद्ध करना कठिन हो जाता है। ऐसे में राज्य न्यायिक समीक्षा से बचने के लिये 'संवैधानिकता की परिकल्पना के सिद्धांत' पर बहुत अधिक निर्भर हो जाता है।
- हालाँकि, न्यायविदों का मानना है कि इस सिद्धांत के प्रयोग के द्वारा न्यायपालिका मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिये प्रदत्त न्यायिक समीक्षा की गारंटी को कमज़ोर करती है।
- इस संदर्भ में न्यायपालिका, राज्य को इस सिद्धांत का लाभ केवल उन मामलों में दे सकती है, जहाँ राज्य इस तथ्य को प्रदर्शित करे कि उसने 'कानून और उसके परिणामों' पर सावधानीपूर्वक विचार-विमर्श किया है।

भावी राह

- सी.जे.आई. ने सुझाव दिया है कि 'शक्तियों के पृथक्करण' के सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए 'विधायिका के भीतर' सुधार किये जाएँ।
- हालाँकि, पूर्ण बहुमत की सरकार से ऐसे सुधार की अपेक्षा कम ही होती है, ऐसे में इस मुद्दे को 'सार्वजनिक गतिशीलता' (व्यापक जनसंवाद) के द्वारा बदलने की आवश्यकता है।
- उक्त आलोक में न्यायपालिका अपने 'उपलब्ध साधनों' के द्वारा विधायी निकायों को उनकी कानून बनाने की प्रक्रिया में सुधार करने के लिये प्रेरित कर सकती है।
- वस्तुतः प्रक्रियात्मक आधार पर कानूनों को असंवैधानिक घोषित करने से कुछ मामलों में शक्तियों के पृथक्करण की चिंताओं को भी कम किया जा सकता है।
- सारगर्भित आधार पर न्यायिक समीक्षा करने के विपरीत, ऐसा करने से यह विधायी निकायों को किसी मुद्दे पर पुनः कानून बनाने और यह सुनिश्चित करने से रोकता है कि उन्होंने कानून के प्रक्रियात्मक दोषों को ठीक किया है।

निष्कर्ष

- भारतीय न्यायपालिका ने **'न्यायिक हस्तक्षेप'** के द्वारा कई बार प्रदर्शित किया है कि अन्य संस्थानों की शिथिलता को दूर करके **लोकतंत्र** को समृद्ध बनाया जा सकता है।
- अतः न्यायपालिका, विधायी प्रक्रिया की समीक्षा के संबंध में एक 'त्वरित और व्यवस्थित दृष्टिकोण' अपनाकर 'लोकतंत्र के मंदिर' में लोगों के विश्वास को बहाल कर सकती है।